सद्गुरु तत्व बोध
SADGURU TATV BODH

नई दिल्ली
अंक – 153

www.saikalpadhyatmsanstha.com

श्री साई शक : 35-36
जनवरी – 2017

॥ ॐ श्री साईनाथाय नमः॥
॥ ॐ श्री सदगुरूनाथ दादाय नमः॥

साधक का कर्त्तव्य
कर्मविमोचन

गुरूबंधुभगिनियों से

साधक को गुरुमार्ग में क्या प्राप्त होता है? इसका ज्ञान सर्वप्रथम होना आवश्यक है। हम सब जगह 'दीक्षा' शब्द सुनते हैं। लेकिन दीक्षा की जिम्मेदारी श्री गुरु की होती है और केवल ''गुरु आज्ञा का पालन करना'' यही भक्तों का कर्त्तव्य है। उपासना दीक्षा, नामस्मरण दीक्षा, अनुग्रह दीक्षा, गुरुदीक्षा, कारण दीक्षा, महाकारण दीक्षा ये जो गुरुमार्ग की दीक्षाऐं है, इन दीक्षाओं का कार्य क्या है और उन दीक्षाओं का संबंध कहाँ से है यह समझ लेना आवश्यक है। इस दीक्षा विधि का आरंभ ढ़ाई हजार साल पहले हुआ है और समय समय पर जिस जिस दीक्षा की आवश्यकता थी उसके अनुसार उन दीक्षाओं की सिद्धता की गई है। श्री गोरक्षनाथ जी का देहिक माध्यम भस्म से निर्माण हुआ इसलिए उनमें काया, वाचा, मन इन तीन तत्वों की कमी थी और श्री मीननाथ जी का जन्म वासना से होने के कारण उन्हें धो डालने की जब आज्ञा हुई तब श्री गोरक्षनाथ जी ने श्री मीननाथ जी की चमड़ी निकालकर धोकर सुखाने के लिए टांग दी थी। जगत में आने वाले आज के कठिन काल में समाज 'अनाथ ना हो' इसलिए ईश्वर ने नवनारायणों को (नवनाथों को) जन्म देकर लोगों को सनाथ किया और उस कार्य में अनेक प्रकार की साधन सिद्धता की। यह सब सिद्धता पहले ही की गई है और समय के अनुसार जैसे जैसे उस

Publisher
Sri Saikalp Adhyatm Sanstha
"Sai Niketan"
New Delhi - 110025
Ph. : 26956561
E.mail : saikalp@gmail.com
dadab6@gmail.com

Patron
Anand Bapshet

Editorial
Vijay Kumar Varma
Jogesh Grover

Subscription
Inland
Yearly : Rs.250.00
Life time : Rs.1000.00

Overseas
Yearly : US$ 250.00
Life time : US$ 500.00

Printed By
Soni Printers
Cell : 09718657567

Published Every Month

©All rights reserved with Publisher

साधन सिद्धता की आवश्यकता होती है उसके अनुसार साधक माध्यम कार्य करते है। आज विपत्ति आने के बाद जब हम ईश्वर है या नहीं इस बात का शोध करते है, तब ईश्वर कहते है कि 'तुम मुझे आज याद कर रहे हो लेकिन तुम्हारे जन्म के पहले मैं था, आज हूँ और आगे भी तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी।'

कार्य के आरंभ में परम पूज्य हाजी बाबा की यह आज्ञा थी कि, 'जगत के सामने कार्य करो।' तब मैने ये सवाल पूछे थे कि ''कार्य का मतलब क्या है?, साधक अवस्था में क्या प्राप्त होना आवश्यक है जिससे साधक के कार्य को 'कार्य' कहा जाएगा? 'कर्म' का पाँच ऋणानुबंधों से किस प्रकार से संबंध होता है?'' जिनका जवाब इस प्रकार है, ''कर्म का जीवन में कार्य और उसकी फल प्राप्ति इनका साधक को ज्ञान होना आवश्यक है। कभी कभी कर्म की फल प्राप्ति से अनिष्ट होता है। उस समय यह ज्ञात होना आवश्यक है कि कर्म का अस्तित्व होते हुए भी उसे उस समय कार्य करने देना चाहिए या नही। वैसे ही उस कर्म को इष्ट फल प्राप्त हो जाने तक उस भक्त को सेवा सूचित करना महत्वपूर्ण है। इसका मतलब, साधक अवस्था में कार्य इस प्रकार का है कि, कर्म के अनुसार जो होने वाला है उसे न होने देना, या कर्म के प्रवृत्ति के अनुसार कार्य न होने देना। इसके लिए भक्त को कर्मवलय से बाहर निकाल कर उसे गुरुवलय में धारण कराना होता है, वैसे ही जो सेवा सूचित की जाती है वह करना भक्त के लिए मुमकिन है या नहीं इसका विचार करना भी साधक का प्रथम कर्त्तव्य है। कार्यकेंद्र यह 'सेवाधाम' (सेवा का घर) है, आने वाले भक्तों को सेवा की लगन लगना आवश्यक है, वैसे ही भक्त को सेवा बताने के बाद भक्त से 'सेवाधाम' (सेवा का घर) न छूटे यह देखने की जिम्मेदारी भी साधक की है।

'कर्म विमोचन' यह साधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह साधन इस प्रकार है :– मनुष्य द्वारा जन्म प्राप्ति करने के बाद उसका संबंध इहलोक और परलोक इन दो लोको से होता है। मनुष्य के जन्म लेने के पहले आत्मा और कर्म परलोक में होते है, ऐसे समय दो अवस्थाओं के विचार के बाद जन्म प्राप्ति होती है। प्रथम अवस्था में, आत्मा को जन्म प्राप्त करने की इच्छा होती है। दूसरी अवस्था में गत कर्मों की (पिछले जन्मों के कर्मों की) वासनाओं के कारण जन्म प्राप्ति होती है। प्रथम अवस्था आत्मा के प्रवृत्त होने के कारण है। उसमें आत्मा का यह उद्देश्य होता है कि पूर्व जन्मों में हुए अच्छे बुरे कर्मों के बंधन से मुक्तता हो जाए। इस मुक्तता की प्राप्ति जन्म लिए बिना नहीं होती है। दूसरी अवस्था में गत जन्मों की इच्छा वासनाओं के कारण यदि उपभोग अपूर्ण रहने के कारण मृत्यु के बाद भी उपभोग लेने की इच्छा वासनाऐं बाकी रह गई तो उन वासनाओं के कारण कर्म, आत्मा को जन्म लेने के लिए मजबूर करते हैं। उस मनुष्य का जन्म उसकी आत्मा की सहज प्रवृत्ति नहीं होती है। जब आत्मा को परलोक से इहलोक में आना होता है तब उसे तीन ऋणानुबंधों का संबंध जोड़ लेना आवश्यक होता है। ये तीन ऋणानुबंध जुड़े बगैर वह कर्म जनम का कार्य नहीं कर सकता है। इन तीन ऋणानुबंधों में प्रथम संबंध मातृ–पितृ ऋणानुबंध से (माता–पिता से) जोड़ना आवश्यक है क्योंकि जन्म प्राप्ति के लिए माता पिता के माध्यम की आवश्यकता है। जन्म

के समय देह का, मतलब काया, वाचा, मन या पिंड इसकी धारणा होते समय जो संस्कार होंगे उन पर कर्म का कार्य निर्भर होता है। इस प्रकार जन्म की धारणा मातृ–पितृ ऋणानुबंधो से जुड जाती है। मातृ–पितृ ऋणानुबंध के बाद इह जगत में जन्म देने वाले माता–पिता के जो आप्त स्वकीय (रिश्तेदार) होते है उनका संबंध भी अनजाने और अनचाहे जुड़ जाता है। इसको शास्त्रों में 'इतरेजन ऋणानुबंध' कहा जाता है। 'इतरेजन' का यह संबंध जीव की धारणा को कुछ भी हित–संबंध जोड़ता नहीं है। उनकी उपस्थिति अनावश्यक रूप से, मतलब बिना मांगे और मानो जान लेने के लिए (हानि करने के लिए) मनुष्य के कर्मों में शामिल होती है।

पूर्व कर्म यह काया, वाचा, मन से घटित हुआ होता है। उस पूर्व कर्म के जिम्मेदार आत्मा और कर्म होते है और इन दोनों की उपस्थिति इह जन्म में आवश्यक होती है। पर मातृ–पितृ और इतरेजन ये दो ऋणानुबंध जन्म प्राप्ति के समय 'कर्म' के रूप में मनुष्य के कर्म में शामिल नहीं होते हैं। इसलिए यह जन्म कर्म के अनुसार व्यतीत होते समय कर्म इस अवस्था में न होने के कारण मातृ–पितृ और इतरेजन इन ऋणानुबंधों से उस कर्म के कार्य में अटकाव होता रहता है तथा जीवन में इन ऋणानुबंधों की मद्द होने की अपेक्षा इनसे अटकाव निर्माण होता है।

मनुष्य के कर्म में प्रबंध होता है, मतलब आत्मा को अपनी मुक्तता कर लेने के लिए आवश्यक कर्म होता है, फिर भी मातृ–पितृ और इतरेजन इन दो ऋणानुबंधों के कारण मनुष्य को मोह के आधीन होना पड़ता है। इसलिए मातृ–पितृ और इतरेजन इन दो ऋणानुबंधों का हितसंबंध कर्म के रूप में आए बिना मनुष्य उनका लाभ नहीं उठा सकता है। मनुष्य के जीवन में मातृ पितृ और इतरेजन ऋणानुबंधो का लाभ प्राप्त होने के लिए मनुष्य के जीवन में देवादिक ऋणानुबंध जुड़ा हुआ है। देवादिक ऋणानुबंध में मनुष्य के घराने के जो कुल देवदेवता है उनकी उपासना पूर्वापार (पहले की) पद्धति से की गई तो उस सेवा के लाभ से जीवन में कारणमात्र रहे मातृ–पितृ और इतरेजन ऋणानुबंधों का रूपांतर 'कर्म' में होता है और कुलस्वामी (कुलदेव) का कार्य मनुष्य के जीवन में पिता का ऋणानुबंध जोड़ने के लिए कारण होता है। शास्त्रानुसार ऐसी योजना मनुष्य के जन्म के पहले ही की गई है। जन्म लेने वाले मनुष्य के जन्म को 'नरजन्म' कहते है लेकिन यदि संस्कारों से पिंड का पोशण किया गया तो उस का 'नारायण' होना नामुमकिन नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि, ईश्वर ने हमें जन्म देते समय हम पर जो इतने उपकार किये है उनसे पता चलता है, औरों को हमें उनका बोध करा देने की आवश्यकता नहीं है। हमारे सिर से पाँव तक जिन माध्यमों का हम अक्सर उपयोग करते रहते है उन माध्यमों के दो दो अंग हमारे बिना माँगे हमें ईश्वर ने दिए है और इन माध्यमों के अंगों का उपयोग करना ध्यान में रखे बिना उपयोग किए उन्हें वापिस मत करो ऐसी चेतावनी भी दी है। ईश्वर के दिए इन माध्यमों के अंगो में देह की दाहिनी बाजु यह 'ब्रह्माण्ड' और बांई बाजु में पिंड की है और इन दोनों का पोषण होने के लिए अन्न नलिका और श्वास नलिका एक जगह दी है। इसी का मतलब जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में है जो ब्रह्माण्ड में है वही पिंड में है। ''देह का पोषण अन्न नलिका द्वारा लिए अन्न और पानी से और

आत्मा का पोषण श्वास नलिका द्वारा लिए वायु और आकाश तत्व से,'' इस नैसर्गिक धर्म के अनुसार होता रहता है। ये चार तत्व जुड़ने से शरीर के मध्य भाग में तेज प्रगट हो ऐसी धारणा है। यानी तब 'नर से नारायण' की यह क्रिया पूर्ण होती है। लेकिन जन्म लेने के बाद हम इस तरह जीव का पालन पोषण नहीं करते है, बल्कि केवल पिंड का पालन पोषण करते है। ईश्वर द्वारा हम मानवों की इतनी अच्छी रचना करने पर भी उन अंगों का या माध्यमों का योग्य रूप से सद्उपयोग नहीं किया जाता। यह जन्म फिर से प्राप्त होगा या नहीं यह कहा नहीं जा सकता है इसलिए ''जो संस्कार होना आवश्यक है वे संस्कार योग्य समय पर कर लेना हम मानवों का धर्म है और इस धर्म का पालन करना'' यह आधुनिक पद्धति का पहनावा और आचार विचार और आहार के कारण यदि हम भूल गए हैं तो भी श्रीगुरु हमें नहीं भूले हैं। यद्यपि हमारी जन्म प्राप्ति इच्छा वासना के कारण हुई है फिर भी आगे जो मृत्यु हमें प्राप्त होगी वह मृत्युरूप में न आए बल्कि हमें 'अमर' यह अवस्था प्राप्त हो जाए, यह प्राप्ति 'गुरुकृपा' के बिना नहीं होती है। इसलिए गुरुमार्गी होना इसका मतलब जेविता खेळिता चित्त दत्तमय झाले यानी खाते समय, खेलते समय चित्त दत्तमय (श्री दत्तगुरु के विचारों में लीन) होना आवश्यक है। अपने बेफिजूल ज्ञान के हठ के कारण हम मानवों को यह लगता है कि हमने केवल भोगो का उपभोग लेने के लिए ही जन्म लिया है। फिर भी हमें सुख मिले इसलिए हम से अन्य कोई साधना न होते हुए भी श्रीगुरु ने हमें श्री पंत महाराज जी के पद के अनुसार साधना सेवा कुछ किए बिना ही 'निजधाम' के दर्शन कराए है, यह अवस्था हमें प्राप्त करा दी है, इसी का अर्थ 'कर्मविमोचन' है।

।। शुभ भवतु।।

एक तुच्छ जन्म जन्म का सेवक,
श्री साईकल्प अध्यात्म संस्था

विनम्र निवेदन

अति हर्ष के साथ आप सभी गुरुबंधु एवं भगिनियों को सूचित किया जाता है कि मासिक पत्रिका "तत्व बोध" का आगामी अंक एवं अन्य सूचना वेबसाइट पर एवं मेल द्वारा प्रेषित की जाएगी। अतः आप सभी गुरुबंधु एवं भगिनियों से अनुरोध है कि आप सभी अपना ई–मेल पता एवं अन्य जानकारी यथाशिघ्र निम्न पते पर प्रेषित करें :

Sri Saikalp Adhyatm Sanstha

"Sai Niketan"

5, Jasola Vihar, New Delhi - 110025 Telephone : 26956561

E-mail : saikalp@gmail.com dadab6@gmail.com

Please send your yearly subscriptions as early as possible